पुराणों में भक्ति का स्वरूप

*डॉ. अनामिका शर्मा

पुराण भारतीय साहित्य का गौरव ग्रन्थ है तथा वेद हमारे सनातन धर्म के सर्वप्रामाणिक तथा प्राचीन ग्रन्थ हैं इसमें सन्देह नहीं हैं, परन्तु वेद का उपबृंहण करने वाला पुराण 'वेद का पूरक' माना जाता है। पुराण सर्वसाधारण की सर्वांगीण उन्नति और परम कल्याण की साधना व सम्पत्ति के अटूट भण्डार हैं। पुराण ही अध्यात्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, तन्त्रशास्त्र है। पुराणों में परलोक विज्ञान, प्रेतविज्ञान, जन्मान्तर और लोकान्तर रहस्य, कर्म रहस्य, तथा कर्मफल निरूपण, नक्षत्र विज्ञान, रत्न विज्ञान, प्राणि विज्ञान, आयुर्वेद विज्ञान और शकुन शास्त्र आदि महत्त्वपूर्ण विषयों की गम्भीर गवेषणा करके इनका रहस्य सरल भाषा में स्पष्ट कर दिया है।

पुराणों में ज्ञान–विज्ञान, वैराग्य, भक्ति, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, यज्ञ, दान, तप, संयम, नियम, सेवा, दया, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, व्यक्तिधर्म, नारीधर्म, मानवधर्म, राजधर्म, सदाचार आदि के विषय में कल्याणकारी अनुभूत उपदेश अतिरोचक भाषा में भरे पड़े हैं। साथ ही पुरूष, प्रकृति, प्राकृतिक दृश्य, ऋषि मुनियों तथा राजाओं की वंशावली एवं सृष्टिक्रम आदि का भी गूढ़ वर्णन है। पुराण वस्तुतः अतीत को वर्तमान से जोड़ने वाली कनकमयी श्रृंखला है।

छान्दोग्योपनिषद् में पुराणों की परिगणना पंचम वेद के रूप में की गई है –

स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमार्थर्वाणं
चतुर्थ मितिहासं पुराणं प×चमं वेदानां वेदम्।।"

संसार में मुक्ति के तीन साधन बतलाये गये हैं ज्ञान, कर्म, भक्ति! उन तीनों साधनों में से सर्वश्रेष्ठ भक्ति है। नारद भक्ति सूत्र में कहा गया है – ''त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी भक्तिरेव गरीयसी'' अर्थात् कल्याण प्राप्ति के सभी साधनों में भक्ति सर्वश्रेष्ठ है।

भक्ति से जानना, देखना और प्रवेश करना–तीनो हो सकते हैं। परन्तु जहाँ भगवान ने ज्ञान की परानिष्ठा बताई है, वहाँ ज्ञान से केवल जानना और प्रवेश करना यह दो ही बताये गये हैं – तो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् (गीता १६/५५)। भक्ति से भगवान के दर्शन भी हो सकते हैं – यही भक्ति की विशेषता है। जबकि ज्ञान की परानिष्ठा होने पर भगवान के दर्शन नहीं होते।

जब भक्त समस्त संसार को ईश्वर का रूप समझने लगता है तो उसे संसार के प्रत्येक कार्य में ईश्वर–विधान ही दिखाई पड़ता है। संसार में जो कुछ भी होता है, वह सब ईश्वर की दया से होता है। ऐसे भक्त में सहृदय का भाव आ जाता है। उसमें द्वेषभाव का नाश हो जाता है। उसमें क्षमा, समता आदि अच्छे गुण आ जाते हैं। इसका स्पष्ट उल्लेख गीता में हुआ है –

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करूणा एव च।
निर्ममो निरहVारः समदुःखसुखः क्षमी।।

ऐसा भक्त हर्ष–अमर्ष, भय और उद्वेग से रहित होता है, शत्रु–मित्र में और मान–अपमान में समान रहता है तथा सर्दी–गर्मी, सुख और दुःखादि द्वन्दों में समान रहता है। संसार के लिए इसमें आसक्ति नहीं रहती –

हर्षामर्षभयोद्वेगैमुक्तो यः स च मे प्रियः।
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सXविवर्जितः।।

भक्ति के सहारे भक्त भगवान का सामीप्य चाहता है। भगवान किसी भी साधना से वश में नहीं होते पर भक्ति से सब वश में हो जाते हैं। इसीलिए भगवान कहते हैं –

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता।।

भागवत के तृतीय स्कन्ध में भक्ति योग के स्वरूप का दिग्दर्शन स्वयं कपिल जी ने अपनी माता देवहूति से किया है।

अह सर्वेषु भूतेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा।

तमवज्ञाय मा मृत्यः कुरुतेऽर्चा विडम्बनम्।।

यो माँ सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।

हित्वार्चां भजते मौढ़याद्भस्यन्येव जुहोति सः ।।

अहमुच्चावचौर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयाऽन्घे।

नैवतुष्येऽर्चितोऽर्चायाँ भृतग्राम म मानिनः ।।

अथ माँ सर्व भूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्।

अर्हयेद्–दान मानाभ्याँ मैव्याऽभिन्नेन चक्षुषा ।।

(भागवत 3/29/21/27)

अर्थ– मैं तो सभी प्राणियों में जीव रूप से विद्यमान हूँ, परन्तु अल्पज्ञ मानव वहाँ मेरा अपमान करके इधर–उधर भटकता रहता है। जो सब प्राणियों में रहने वाले ईश्वर को छोड़कर मूर्खतावश मन्दिरों में श्रृंगार, झाँकी देखता फिरता है, वह तो भस्म में हवन के समान व्यर्थ काम करता है। जो प्राणियों के उपकार को छोड़कर उलटे उनका तिरस्कार करता है और बड़ी सामग्रियों से मन्दिरों में मेरी पूजा करता फिरता है, मैं उस पर कभी भी प्रसन्न नहीं होता। इस लिये समस्त प्राणियों में रहने वाले मुझको दान तथा सत्कार द्वारा पूजन करे। अर्थात् जीवों का उपकार करे, उनको सन्तुष्ट करे।

पुराणों में भक्ति के स्वरूप का विवरण पद्म, कूर्म, बृहद्नारदीय प्रभृति पुराणों में प्रस्तुत किया गया है। जिस प्रकार भगवान का स्वरूप अनन्त हैं उसी प्रकार उनके नामों की महिमा अनन्त है। भक्त अपनी भक्ति की पराकाष्ठा के अनुसार भगवान के नामों को स्मरण करता है। भगवन् नाम जपने का फल पुराणों में विस्तार से वर्णित है। पुराणों में राम से बढकर राम के नाम को सिद्व किया है। पाप को दूर करने का और भक्त का भगवान के सामने पहुँचने का सर्वाधिक साधन नाम की महिमा है। विष्णु पुराण में कहा गया है –

यस्मिन् न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो, यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः।
मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यव्ययः
किं चित्रं यदधं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते।।
विष्णु पु. ६/८/५७

जिसमें चित्त लगाने वाला नरकगामी नहीं होता, जिसके चिन्तन में स्वर्गलोक भी विघ्नरूप है, जिसमें चित्त लग जाने पर ब्रह्मलोक भी तुच्छ प्रतीत होता है और जो अविनाशी प्रभु शुद्व बुद्विवाले पुरूषों के हृदय में स्थित होकर उन्हे मुक्ति प्रदान करते हैं, उस अच्युत का चिन्तन करने से यदि पाप विलीन हो जाते तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

नाम स्मरण करते ही भगवान् ज्यों ही साधक के हृदय में विराजते हैं, त्यों हि उसके समस्त दोषों को नष्ट कर देते हैं, जिस प्रकार ऊँची–ऊँची लपटों वाला अग्नि वायु के साथ मिलकर सूखी घास के ढेर को जला डालता है –

यथाग्नि रुद्धतशिखः कक्षं दहति सानिलः।
तथा चित्तस्थितो विष्णुर्योगिनां सर्वकिल्विषम्।।
विष्णु. ६/७/७४

अजामिल का उपाख्यान नाम–स्मरण के विषय में नितान्त विश्रुत है। मरते समय धोखे से भी यदि भगवान् का नाम उच्चारित हो जाये, तो शुभ फल होने में तनिक भी विलम्ब नहीं होता। पुत्र को बुलाने की अभिलाषा से उच्चारित "नारायण" नाम न होकर "नामाभास" ही तो है, परन्तु उसके सार्वभौम प्रभाव से प्रत्येक भक्त परिचित है। नाम के शोधन के विषय में श्रीमद्भागवत का प्रख्यात पद्य है–

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि–
स्तथा विशुध्यत्यघवान् व्रतादिभिः।
यथा हरेर्नाम पदैरुदाहृतै–
स्तदत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम्।। *भाग. ६/२/१९*

नाम के उच्चारण मात्र से ही पवित्रकीर्ति भगवान् के गुणों का सद्यःज्ञान हो जाता है, जिससे साधक का चित्त उसमें रमने लगता है। नाम–स्मरण का यही परम उद्देश्य है। भगवान् के निश्छिद्र गुणों में अपने आपको लगा देना और तदुत्पन्न आनन्द–रस का आस्वादन देना। अन्य फल गौंण है, यही तो मुख्य फल है, भगवान् में, उनके गुण, लीला और स्वरूप में रम जाने का एकमात्र सुलभ साधन है– नाम स्मरण। शिवपुराण में भगवान शिव का सच्चिदानन्द परमब्रह्म स्वरूप विचित है। भगवान शिव मंगलकारी व कल्याण के दाता है

भक्ति शास्त्र का सर्वस्व है। भागवत की रचना का प्रयोजन ही भक्ति तत्व का निरूपण है। भागवत के श्रवण करने से भक्ति के निष्प्राण ज्ञान–वैराग्य पुत्रों में प्राण का ही संचार नहीं हुआ, प्रत्युत वे पूर्ण यौवन को प्राप्त हो गये। अतः भगवान् की प्राप्ति का एकमात्र उपाय भक्ति ही है–

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।

न स्वाध्याय स्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ।।

– भागवतपुराण एकादश स्कन्ध २०

परम भक्त प्रहलाद्जी ने भक्ति की उपादेयता का वर्णन बडे सुन्दर शब्दों में किया है कि भगवान् चरित्र, बहुज्ञता, दान, तप आदि से प्रसन्न नहीं होते, वे तो निर्मल भक्ति से प्रसन्न होते हैं। भक्ति के सिवाय अन्य साधन उपहास मात्र हैं–

प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता
न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम्।।
भागवत ७/७/४१-४२

भागवत के अनुसार भक्ति ही मुक्ति प्राप्ति में प्रधान साधन है। ज्ञान, कर्म भी भक्ति के उदय होने से सार्थक होते है। जिस ईश्वर से सभी प्राणियों का सृजन है और जिसने इन समस्त को फैलाया है, अपने कर्तव्य कर्मों से ही उसकी पूजा करके मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर सकता है। सभी शास्त्रों का सार तो अपने कर्तव्य कर्मों को पूर्ण रूप से सम्पादन करते हुए सभी प्राणियों का यथा शक्ति उपचार करते रहना, यही भक्ति का सच्चा स्वरूप दृष्टिगत होता है।

***संस्कृत विभाग**
महर्षि दयानंद सरस्वति विश्वविद्यालय,
अजमेर (राज.)

संदर्भ ग्रन्थ–सूची

1. छान्दोग्योपनिषद् ७/१/२
2. नारदभक्तिसूत्र–८१
3. श्रीमद्भगवद्गीता १२/१३
4. श्रीमद्भगवद्गीता १२/१५
5. श्रीमद्भगवद्गीता १२/१८
6. श्रीमद्भगवद् पुराण ११/१४/२०
7. पद्मपुराण क्रियायोग सागर १/३, कूर्म पुराण उत्तर्रार्द्धय/२५, बृहद्नारदीयपुराण ३२/२९
8. अखण्डज्योति १९४३
9. विष्णुपुराण ६/८/५७
10. विष्णुपुराण ६/७/७४
11. भागवतपुराण एकादश स्कन्ध २०
12. भागवतपुराण ७/७/४१-४२